

B.A. I कबीर और उनका रहस्यवाद

कबीर मध्यकालीन भारतीय साहित्य और समाज की सर्वाधिक जाग्रत मनीषा हैं। वे घोषित रूप से न तो समाज –सुधारक थे और न कवि, फिर भी उनकी 'बानी' में सच्चाई का वह तेज था कि धर्म, समाज और साहित्य की परम्परागत मान्यताएं प्रश्नचिह्न के घेरे में आ गईं, उनकी व्यंजक, फक्कड और उदास कविता ने ऐसा चमत्कार किया कि सदियों से अधिकार वंचित, शोषित- उपेक्षित लोगों में ज्ञान, धर्म एवम् कविता की प्यास भड़क उठी और देखते ही देखते इन सभी क्षेत्रों में क्रांति हो गई। कबीर के साथ रैदास, नानक, दादू, हरिदास सेन आदि निचली जाति के संतों ने अपनी आध्यात्मिक आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति के लिए गीत रचे। इस आध्यात्मिक आकांक्षा में उनके लौकिक जीवन के ही दुःख की परोक्ष घोषणा थी। कबीर आदि निर्गुण पंथी संतों का धर्म और साहित्य के 'वर्जित प्रदेश' में प्रवेश एक युगांतकारी घटना थी। इस घटना ने निचली श्रेणी के लोगों के युग-युग से संचित सपनों की उड़ान के लिए एक मुक्त आकाश दिया। यह आकाश 'अनुभव सत्य' का था, जो सत्ता और शास्त्र पर काबिज वर्गों के सामने कठिन चुनौती बनकर उपस्थित हुआ।

उत्तर भारत में निर्गुण पंथ को निचली श्रेणी की जनता का धार्मिक पंथ बनाने का श्रेय कबीर को है। ऐसा नहीं कि निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा भारतीय धर्म- दर्शन में नहीं थी। एकेश्वरवादी और अद्वैतवादी निर्गुण ईश्वर के सम्बन्ध में कई तरह की दार्शनिक मीमांसा प्रस्तुत कर चुके थे। यह बहुत महीन- सी दार्शनिक बहस थी, जो सामान्य जन की पहुँच से बाहर थी। निर्गुण सम्बन्धी इस बहस में सामान्य जन की धार्मिक आकांक्षा और ईश्वर के लिए शायद ही कोई जगह थी। यही कारण है कि शंकराचार्य का अद्वैतवाद कबीर आदि निर्गुण पंथी संतों के समय तक सामान्य लोगों में लोकप्रिय नहीं हुआ था। यह पंडितों के बीच जारी अंतहीन बहस का विषय था। कबीर ने वेदांत दर्शन से निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा ली या शंकर के अद्वैतवाद से, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण इतिहास में नहीं मिलता। अब तो कुछ इतिहासकार इस तरह के मत का पूरी तरह खंडन करते हैं। जो भी हो, कबीर के समय तक निर्गुण ब्रह्म एक ठोस वास्तविकता से अधिक दार्शनिक मीमांसा भर था। कबीर की ऐतिहासिक भूमिका यह है कि उन्होंने उस अमूर्त ईश्वर को मूर्त रूप दिया और उसे दार्शनिकों – आचार्यों के खाते से निकालकर ईश्वर विहीन निचली श्रेणी की जनता के हवाले किया। कबीर के निर्गुण का वेदांत और अद्वैत दर्शन के निर्गुण से मेल नाम मात्र का है। यह निर्गुण ब्रह्म मध्यकालीन धर्म और साहित्य में नितान्त नया और मौलिक सृजन है। अगर ऐसा नहीं होता तो यह निर्गुण ब्रह्म निचली श्रेणी की जनता के जरिए भक्तिकालीन साहित्य और समाज में नई चेतना के आन्दोलन का संवाहक नहीं बनता। कोई तो बात थी कि वेदांत और अद्वैत दर्शन के निर्गुण ब्रह्म से सामान्य जन की आध्यात्मिक प्यास न बुझ सकी थी; न सामान्य जन उस निर्गुण ब्रह्म को अपनी जीवनी शक्ति बना सका था। वेदांत का निर्गुण ब्रह्म दार्शनिकों तक सीमित था, जबकि कबीर आदि संतों का निर्गुण आंदोलनधर्मी नई चेतना की ठोस आधारभूमि है। वेदांत के निर्गुण और कबीर के निर्गुण में अंतर को ध्यान में रखें बिना भक्तिकालीन साहित्य और समाज में कबीर के महत्व का ठीक-ठाक मूल्यांकन नहीं हो सकता।

इस निर्गुण ब्रह्म के जरिए कबीर ने यह बताया कि ब्राहमण-शूद्र, हिन्दू- मुसलमान सबका ईश्वर एक है, इसके लिए जात-पात के झगड़े और धार्मिक फसाद व्यर्थ हैं। धार्मिक विभेद और वेद-कुरान की सत्ता को इस निर्गुण ब्रह्म ने ऐसी चुनौती दी, जिसकी कोई दूसरी मिसाल उस काल के समाज और साहित्य में नहीं है। इस निर्गुण ब्रह्म के जरिए सभी तरह के धार्मिक बाह्याचारों की व्यर्थता सिद्ध करते हुए कबीर ने सबके लिए एक सुगम धार्मिक राह निकाली। कबीर का यह क्रान्तदर्शी रूप था, जिसकी प्रशंसा उनके विरोधियों तक ने की। लेकिन उन्होंने जिस निर्गुण ब्रह्म को अपने धार्मिक- सामाजिक उद्देश्य का सबसे बड़ा संबल और पाथेय बनाया, उसकी लोक स्वीकृति आसान न थी, उसे लेकर तरह-तरह के विवाद खड़े किये गए और उसे सामान्य 'लोकधर्म' के विरुद्ध बताया गया। बहुदेवों की सगुण उपासना वाले इस देश में निर्गुण पंथ की आलोचना और निषेध के संगठित सांप्रदायिक प्रयास शुरू हुए। निर्गुण पंथ ईश्वर के सगुण साकार

अस्तित्व को नकारता है। इसका कारण यह है कि ईश्वर के सगुण साकार अवतारी रूप और उसकी उपासना विधि के मूल में वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा है सगुणवादियों ने इसीलिए निम्न जन्मा लोगों के निर्गुण पंथ की आलोचना की। निर्गुण पंथ के विरोध का एक अन्य कारण भी था। कबीर ने जिस निर्गुण ब्रह्म का निर्माण किया, उसे काया के भीतर ही खोजने की बात की। उन्होंने कहा की तेरा साईं तुम्हारे भीतर है। उसे काबा- काशी और मंदिर-मस्जिद में ढूढना व्यर्थ है। ईश्वर का बगीचा तुम्हारे शरीर में ही है। उसका सौन्दर्य देखने के लिए बाहर जाना व्यर्थ है – ‘ बागों न जा रे न जा, तेरी काया में गुलजार’। लेकिन उस ईश्वर की छवि देखने के लिए काया के भीतर सहस्त्रार चक्र पर बैठकर समाधि लगानी होगी। उस ईश्वर के दर्शन के लिए काया के भीतर इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, सहस्त्रदल कमल, अनहद नाद आदि अदृश्य उपासना साधनों की जरूरत है। इन साधनों के जरिए अपनी काया में ही उस ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है और अनहद संगीत सुना जा सकता है। यह उपासना मार्ग बाह्याडम्बरो को अस्वीकार कर सिर्फ शुद्ध एवम् सच्चे तन-मन की जरूरत पर जोर देता है। यह हर लिहाज से भेदभाव रहित उपासना मार्ग है। इसके लिए मंदिर- मस्जिद, काशी-काबा, वेद-कुरान और पंडित- मुल्ला की जरूरत नहीं। भेद पैदा करनेवाले और खर्चिले बाह्याचारों की तुलना में यह आम लोगों के लिए सुलभ उपासना मार्ग था। इस मार्ग की खोज करके कबीर ने निम्न जन्मा लोगों की ‘जुगन- जुगन की त्रिसा’ बुझाई। यह ‘त्रिसा’ धर्म और ईश्वर की थी। सगुण ईश्वर और मंदिर निम्न जन्मा लोगों के लिए तब प्रवेश वर्जित क्षेत्र थे। उनका धर्म तो मालिकों की सेवा करना भर था। उनकी मुक्ति धर्म से नहीं, मालिक की सेवा में थी, उनका स्थान मंदिरों में नहीं, उनकी सीढियों पर था। कबीर ने ऐसे लोगों को निर्गुण पंथ के रूप में एक धर्म और ईश्वर देकर महान कार्य किया। भक्तिकाल में यह एक सामाजिक क्रांति थी।

लेकिन यह निर्गुण पंथ जिस उपासना विधि-समाधि आदि -की बातें करता था, उसमें गुह्य साधना और रहस्य के लिए काफी गुंजाईश थी। जिस शरीर में सभी देवों तथा तीर्थों के दर्शन करने का दावा निर्गुणियों ने किया, वह एक अद्भुत रहस्य- लोक हो गया। ब्रह्माण्ड का सारा खेल इस पिंड में देखने की घोषणा कबीर ने की-

चंदा- झलकै यहि घट माहीं|ऊँची आंखन सूझै नाहीं॥

यही घट चंदा यही घट सूर| यही घट गाजै अनहद तूर॥

यहि घट बाजै तबल-निसान| बहिरा सबद सुने नही कान॥

मृगा हास कस्तूरी बास | आपन खोजै खोजै घास ॥

किन्तु घट में ही पूरे ब्रह्माण्ड के दर्शन की प्रक्रिया ने एक किस्म की एकांत और अलक्षित –सी साधना को जन्म दिया, जो रहस्यवाद का मूलाधार है। यह रहस्यवाद कबीर में भी है और दूसरे निर्गुण पंथी संतों में भी। कबीर आदि का यह रहस्यवाद बहुत हद तक आज भी रहस्य ही है, उनके विरोधियों के लिए भी और समर्थकों के लिए भी। कबीर जैसे क्रान्तदर्शी कवि का यह रहस्यवाद उनके आलोचकों का बहुत बड़ा हथियार है। कबीर के समर्थक भी उनके रहस्यवाद की कोई सार्थक संगति उनके क्रांतिचेता रूप से नहीं मिला पाते। आखिर यह घट के भीतर खेला जाने वाला रहस्यवादी धूपछांही खेल ही तो था, जो बाह्याचारों की धजियाँ उड़ाकर और ईश्वर विहीन लोगों को ईश्वर देकर ‘जुगन-जुगन की त्रिसा’ इसी संसार में बुझाने के कबीर के महान उपक्रम पर प्रश्नचिह्न लगता हुआ यह घोषणा कर रहा था की यह संसार अपना नहीं, माया है; यथार्थ नहीं, भ्रम है, स्त्री इसी माया का सबसे विकारयुक्त रूप है; मनुष्य का असली धर्म इस मायालोक से मुक्त होने में है, इस संसार रूपी नैहर को छोड़कर बाबुल के घर जाने में है, आदि। कबीर की यह घोषणा उन्हें रहस्यमयी साधना का अनुगामी बनती प्रतीत होती है। आरोप है कि यह साधना संसार की वास्तविकता को नकार कर एक काल्पनिक और अवास्तविक दुनिया में जाने को उद्धृत करती है। इस दुनिया को माया मानकर अदृश्य को सत्य मानना रहस्यवाद है। लोक की चिंता में हलकान हुए जा रहे संत कवि का यह लोक विमुख धर्म कुछ चकित करने वाला है। प्रश्न है कि यह रहस्यवाद लोक विमुखता का ही पर्याय है या इसकी कोई सामाजिक सार्थकता भी है?

निर्गुण ब्रह्म की जन्म कथा में ही रहस्यवाद का बीज मौजूद है, जो रूप-रेखा विहीन, निराकार और अव्यक्त चेतना पुंज है, उसके बारे में तरह- तरह की जिज्ञासा और कल्पना करना सहज स्वाभाविक है। जिज्ञासा मन उसके बारे में, उसकी दयालुता – महानता के बारे में तरह-तरह के अनुमान लगाएगा। यह एक अंतहीन जिज्ञासा है और यह जिज्ञासा रहस्य का घर है। दृश्य लोक से भिन्न अदृश्य जगत की किसी अलौकिक सत्ता की भाव और चेतना के स्तर पर प्रतीति और फिर उस अनुभव की शब्दों में अभिव्यक्ति एक टेढ़ी एवम् जटिल प्रक्रिया है। चूँकि बहुत कुछ अप्रकट और अनुभव के स्तर पर है, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति में धुंधलेपन, अस्पष्टता, दुर्बोधता, प्रतीकता आदि का होना लाजिमी है। निर्गुण भक्ति में रहस्यवाद के प्रवेश और उपस्थिति की वजह यही है। जिन धर्मों में ईश्वर के निर्गुण रूप की अवधारणा ग्रहण की गई, उन धर्मों में प्रायः रहस्यवाद भी है। सगुण भक्ति में रहस्यवाद का अभाव है। उसमें अदृश्य सत्ता की कोई गुंजाइश नहीं है, जो कुछ है खुला खेल फरुखाबादी है। राम, कृष्ण आदि भगवान जन्म लेते हैं, धर्म की रक्षा के लिए तरह-तरह की लीलाएं करते हैं, और सारी लीलाएं चूँकि दृश्यमान होती हैं, इसलिए वहां न किसी रहस्य की गुंजाइश है, न रहस्यवाद की। इस दृश्य जगत में धर्म हेतु जन्म लेने वाले ईश्वर की सेवा करना, कीर्तन करना, उसका अनुग्रह प्राप्त करना आदि ही उसकी भक्ति के विधान हैं। इसके लिए शुद्ध आचरण और शुद्ध मन का होना जरूरी है। यह सरल-सहज उपासना पद्धति है। यह अलग बात है कि इस उपासना पद्धति में भी भव्यता और ताम झाम का महत्व बढ़ गया, किन्तु है यह सरल- सहज ही। सगुण भक्ति में तो नाम जाप ही काफी है। लेकिन यह सगुण भक्ति जात-पांत की विभेदकारी भूमि पर आधारित है, इसके मूल में वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा है, इसलिए निम्न जन्मा लोगों के लिए यहाँ सम्मान जनक स्थान नहीं है। यही कारण है की भक्ति आन्दोलन के प्रथम खेव के निम्न जन्मा संत कवियों ने उस निर्गुण ईश्वर की भक्ति स्वीकार की, जो जाति, वर्ण और धर्म से परे है। निर्गुण पंथ कबीर और उनके समानधर्मा संत कवियों द्वारा विवशता में अपनाए गए धर्म का प्रतिफल है। इस विवशता के पीछे लाखों-करोड़ों 10 जन्मा थीं, साथ ही जो दस्तकारी, शिल्प, व्यापार आदि धंधों से जुडी थीं। नई सामाजिक- राजनीतिक स्थिति ने उनकी आर्थिक स्थिति कुछ बेहतर बना दी थी। थोड़ी आर्थिक निश्चिंतता आते ही उनके भीतर युगों की सोई सांस्कृतिक – धार्मिक चेतना जग गई। इस चेतना ने निर्गुण पंथ के रूप में अपना वैकल्पिक धार्मिक संसार रचा। निर्गुण पंथ मध्यकाल में उन नई सामाजिक शक्तियों की धार्मिक इच्छाओं- आकांक्षाओं की साकार अभिव्यक्ति है, जिनके लिए हिन्दू- धर्म और इस्लाम तथा वेद और कुरान दोनों ही अपर्याप्त थे। इन सामाजिक शक्तियों ने जिस ईश्वर की रचना की, उसका नाम निर्गुण था। जब ईश्वर आया तो उसकी प्राण प्रतिष्ठा के लिए मंदिर भी चाहिए। मंदिर बनाने की उन्हें छूट नहीं थी। यह नया वर्ग इतना शक्तिशाली नहीं था और शासक- पुजारी वर्ग इतना उदार नहीं था कि मंदिर बनता। मंदिर की व्यर्थता भी इनके सामने थी। मंदिर भेदभाव के अड्डे थे। इसलिए इन्होंने ऐसे मंदिर की रचना की जहाँ भेदभाव की गुंजाइश नहीं थी। इन्होंने अपने तन को ही मंदिर माना और हर किसी को अपने तन रूपी मंदिर में ही साधना करने की सलाह दी। तन मंदिर है; मंदिर को साफ और पवित्र होना चाहिए। इसके लिए जीवन में शुद्ध आचरण की आवश्यकता बताई गई। मंदिर में पूजा – आराधना का विधि- विधान है, उसी तरह इस तन रूपी मंदिर में भी साधना का और ब्रह्म- साक्षात्कार की विधि- विधान विकसित हुआ। यह विधि- विधान ध्यान, योग- कुंडलिनी, समाधि आदि के जरिए निर्मित हुआ। यह विधि- विधान ध्यान, योग- कुंडलिनी, समाधि आदि के जरिए निर्मित हुआ। इन्हीं के जरिए इस मंदिर में प्रवेश संभव था, इन्हीं के जरिए ब्रह्म- साक्षात्कार भी संभव था। यह वैकल्पिक धर्म था, वैकल्पिक धर्म और वैकल्पिक उपासना – मार्ग था। इस वैकल्पिक संसार की रचना से उपेक्षित – उत्पीडित जनता की भौतिक और धार्मिक प्यास बुझती थी, जीने की नई राहें बनती थीं। इसे इस रूप में देखने पर उसकी प्रगतिशील भूमिका दिखाई देगी, वर्ना यही लगेगा कि एक विधि- विधान की जगह उससे अधिक निकृष्ट विधि- विधान निर्गुण पंथ ने विकसित किया।

कबीर आदि निर्गुण पंथियों में जो रहस्य भावना है, उसका कारण तन को देवालय बनाकर उसी में अपने ईश्वर के साक्षात्कार का प्रयत्न है। इस रहस्य भावना के अपने प्रतीकार्थ हैं। किसी बाहरी कर्मकांड और दिखावे की जरूरत नहीं है। इन्द्रियों समेत इस पुरे तन का ही शोध करना है, क्योंकि तन के भीतर ही सब कुछ है। यह काया मंदिर और मनसा (मन) थंभ है। यह मंदिर विकट किले सा है, जिसे जीतना कठिन है, क्योंकि – ‘क्यूँ लीजै गढ़ बंका भाई, दोवर कोट अरु तेवर खाई.’ इस तन रूपी बक्र गढ़ को कैसे जीता जाए? इसका परकोटा दुहरा और खाई तिहरी है। इसमें काम के

कपाट लगे हैं, सुख-दुःख इसमें द्वारपाल हैं, पाप-पुण्य द्वार हैं, क्रोध जहाँ प्रधान पद पर हैं, लोभ विकत योद्धा है. मन यहाँ का राजा है, आदि –आदि. कबीर के पास इस गढ़ को जीतने के लिए प्रेम का पलीता, सुरति की तोप और ज्ञान का गोला है. ब्रह्माग्नि, सत्य, संतोष, साधु –संगति और गुरु – कृपा आदि हथियारों के साथ कबीर ने चढ़ाई की. गढ़ को जीता और राजा को वश में कर लिया. जाहिर है कि ऐसे बीहड़ गढ़-से मंदिर में प्रवेश के लिए अपने कठोर नियम हैं. इन नियमों का पालन करके ही उस मंदिर में अभ्यर्थना की जा सकती है.

लेकिन संसार ही जब माया है, तब किसी वैकल्पिक संसार का क्या मतलब? एक माया शंकराचार्य की थी, एक कबीर की. शंकराचार्य की माया ने दर्शन के क्षेत्र में पांडित्य की कैसी चुनौती उपस्थित की, इस इतिहास से सभी परिचित हैं. वह एक अतिसूक्ष्म बौद्धिक बहस है, जिसका कोई सम्बन्ध सामान्य जन से नहीं. इसलिए शंकर की माया को नामवर सिंह 'पंडितों की संपत्ति' कहते हैं. कबीर माया से टकराते हैं, उसे जीतते हैं और कभी- कभी उसी के वशीभूत होने को विवश हो जाते हैं. वह इसी लोक की माया है. यह माया एक ठोस वास्तविकता है, जिससे हमारा आपका हर रोज सामना होता है. जो संसार की माया यानी यहाँ बिखरे हुए विभिन्न आकर्षणों से दो- चार नहीं होगा, वह इसकी न्यारी गति को न तो समझ सकता है और न नया समाज रचने की सोच सकता है. यह माया कबीर को दुःख भी देती है. लेकिन यह दुःख दुनियावी भेद भाव से उपजता है. जैसे कबीर की माया ठोस वास्तविकता है वैसे ही उनके राम और निर्गुण भी. इस निर्गुण और राम की शक्ति के सहारे वे संसार की माया से टकराते हैं. जिस मन्त्र से माया रूपी संसार की ठोस सच्चाई का सामना किया जाये, वह निर्गुण और राम ठोस सच्चाई के सिवा और कुछ नहीं. ठोस की काट ठोस. ठोस का सामना हवाई बातों से नहीं किया जा सकता. न तो कबीर के राम दर्शनशास्त्र की अमूर्त अवधारणा हैं, न उनकी माया, न उनका निर्गुण और न रहस्यवाद. नामवर सिंह के अनुसार "माया की तरह ही कबीर के निर्गुण राम काफी भौतिक हैं – 'भौतिक' और वास्तविक. सगुण से किसी भी माने में कम मूर्त नहीं. जिस निर्गुण से मंदिर और मस्जिद की नींव हिल गई, ब्राह्मण और शेख विचलित हो गए, वेद- कुरान की विश्वसनीयता संदेह के घेरे में आ गई, वह एकदम हवाई चीज नहीं हो सकती. निर्गुण ऐसा 'ज्ञान' है जिसे कबीर कभी तीर कहते हैं और कभी तलवार. स्वयं कबीर के हृदय में यह ज्ञान तीर की तरह चुभा था, लेकिन कबीर के विरोधियों की नज़र में वह चमचमाती हुई तलवार थी. जो ज्ञान न हिन्दू, न मुस्लमान हों, और जो ब्राह्मण-शूद्र के भेद को नकारता हो, उसका नाम निर्गुण के अलावा और हो ही क्या सकता है. सभी स्थापित मान्यताओं का निषेध ही निर्गुण है.....निर्गुण को स्वीकार करके ही कबीर ने बाकी सबको अस्वीकार करने का साहस हासिल किया. कहना न होगा कि 'निर्भय निरगुन' गाने वाले कबीर के अन्दर कोई गहरा स्वीकार है. यह निर्गुण कोई रहस्य नहीं, बल्कि क्रांतदर्शी कवि की उदात्त कल्पना है, सभी वांछित मूल्यों और सपनों का संभाव्य मानचित्र."

इसलिए कबीर के रहस्यवाद, अनहद, ध्यान- योग के मूल में निहित जो मूल आशय है उसे समझने की जरूरत है. इसके पीछे इसी लोक में भौतिक एवम् आध्यात्मिक अधिकारों से वंचित सामाजिक रूप से अपमानित- प्रताणित जनों के लिए वैकल्पिक संसार रचने का स्वप्न है. यह स्वप्न हकीकत बनता है या नहीं, यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना महत्वपूर्ण है सामंती काल में उस स्वप्न का जन्म लेना. उस स्वप्न की अंतर्वस्तु कैसी होगी, जिसकी चर्चा मात्र वेद, कुरान के हिमायती पंडितों- काजियों के कान खड़े कर दिए. न किसी राजा का आश्रय, न बौध धर्म की तरह संगठित कोई संघ संप्रदाय, फिर भी कबीर के निर्गुण ने अपने विरोधियों के भीतर सगुण भय पैदा कर दिया. सूर- तुलसी समेत प्रायः सभी सगुणवादी संतों के कान खड़े हो गए. यदि निर्गुण रहस्य है, अबूझ है तो आज भी अनपढ़ दलितों के बीच लोकप्रिय क्यों है? प्रेमचंद के धीसू – माधव तथा अत्यंत निचली श्रेणी के पात्र कबीर का निर्गुण क्यों गाते हैं? आधुनिक काल में निराला का 'चतुरी चमार' और उसके साथी भी निर्गुण गाते हैं. न सिर्फ गाते हैं, बल्कि उसका मतलब भी बताते हैं. अनपढ़ चतुरी का और कबीर पदावली का विशेषज्ञ है. जिस निर्गुण को समझने में पंडितों के छक्के छूटते हैं, उसका मतलब चतुरी और उसके साथी जानते हैं. निराला को आश्चर्य होता है- 'वे लोग ऊँचे दर्जे के उन गीतों का मतलब समझते थे, उनकी नीचता पर एक आश्चर्य मेरे साथ रहा. बहुत से गाने आलंकारिक थे. वे उनका मतलब भी समझते थे.' विद्वानों को भले ही निर्गुण का अर्थ समझने में

कठिनाई हो, उसमें परत-दर –परत रहस्य दिखाई देता हो, प्रेमचंद- निराला के धीसू-माधव और चतुरी जैसे लाखों दलितों की आध्यात्मिक प्यास कबीर आदि संतों के निर्गुण से बुझती रही है और इससे उन्हें जीने की उर्जा मिलती रही है। आधुनिक साहित्य में ब्राह्मणवाद के प्रखर आलोचक प्रेमचंद- निराला के दलित पात्रों का निर्गुण गाना यों ही नहीं है। इसके गहरे निहितार्थ हैं। यह कबीर की लोक चिंता की लोक में व्यापक स्वीकृति का सूचक है। कबीर आदि निर्गुण पंथी संत अपने नाम पर चलाये गए मठों –सम्प्रदायों में आज दफ़न कर दिए गए हैं, किन्तु वे जीवनी – शक्ति बनकर लोक में ही जीवित हैं।

कबीर की रहस्य-भावना की ही तरह उनकी उलटबांसियों की भी आलोचना हुई है और यह कहकर उनका मजाक उड़ाया गया है कि ऐसा कहकर वे अनपढ़ जनता पर भाषित करना चाहते थे कि वे ज्ञानी एवम् पहुंचे हुए संत हैं। यह उलटबांसी भी रहस्य-भावना का ही एक रूप मानी गई। ऐसा क्यों है कि 'डायरेक्टनेस' का हिमायती कबीर उलटबांसियों की शरण में जाता है? कुछ प्रचलित और सपाट उलटबांसियों की शरण में जाता है? कुछ प्रचलित और सपाट उलटबांसियों में ही नहीं गहन आध्यात्मिक पदों – साखियों में जहाँ कबीर का क्षोभ नहीं, शांत मन बोलता है, वहाँ भी रहस्य भाव और प्रतीक भरे पड़े हैं।

उलटबांसी का कारण नामवर सिंह के अनुसार कबीर का दुःख है। कबीर का दुःख क्या है? एक दुःख तो समाज का भेदभाव है, जिसके लिए निर्गुण गाते हैं। दूसरा दुःख 'सभी वांछित मूल्यों और सपनों का संभाव्य मानचित्र' है, जब मानचित्र है तो दुःख कैसा? " दुःख सिर्फ इस बात का है की दिमाग में नक्शा तो है, लेकिन उसके मुताबिक एक नया संसार बनाने के साधन नहीं हैं। यह असहायता और विवशता ही दुःख है। वह नक्शा आँखों में तो है, लेकिन आँखों के सामने नहीं है, मन में है; संसार में नहीं। कबीर की ही तरह यह दुःख भी निराला है: विरोधाभासों से भरा हुआ, विडम्बनाओं से युक्त। अनुभव के ये उत्कट क्षण इसलिए प्रायः उलटबांसियों में व्यक्त होते हैं।" बात सही है, जिस नए संसार का चित्र कबीर के पास है, उसे निर्मित न कर पाने की विवशता ने प्रतीकों, उलटबांसियों और विरोधाभासों को जन्म दिया है। यही बात मुक्तिबोध पर भी लागू होती है, जिनके 'भविष्य का नक्शा' की याद नामवर सिंह को कबीर के नए संसार के प्रसंग में आती है। लेकिन मुक्तिबोध के पास वर्तमान के तीव्र बोध के साथ 'भविष्य का नक्शा' जितना सुस्पष्ट है, कबीर के पास नहीं। कबीर के पास जितना अपने समय और समाज का गहरा और तीखा बोध है, उसे तहस- नहस कर नया समाज बनाने का दृढ संकल्प है, उतना उस नए समाज का स्पष्ट चित्र नहीं है। कबीर धर्म का विकल्प धर्म में, 'वेद कितेब' का विकल्प 'गुरुबानी' में सगुण का विकल्प निर्गुण में, बाहरी मंदिर का विकल्प काया के भीतरी मंदिर में, बाह्याचार का विकल्प तन रूपी मंदिर में 'सहज समाधि' लगाने में दृढ़ते हैं। ऐसे में रहस्य- भावना ही नहीं, उलटबांसियों और विरोधाभासों का पैदा होना स्वाभाविक है। मुक्तिबोध के पास जिस तरह से पूंजीवाद का विकल्प समाजवाद है, उतना स्पष्ट नक्शा कबीर का नहीं है। बावजूद इसके मुक्तिबोध के यहाँ भी 'साक्षात्-रहस्य' के रूप में 'रक्तालोक स्नात पुरुष' मौजूद है। आखिर क्यों? इसलिए कि जटिल यथार्थ को ठीक-ठीक व्यक्त करने में जब पुराने शब्द, बिम्ब, प्रतीकादि असमर्थ पड़ जाते हैं, तब नए बिम्बों – प्रतीकों की जरूरत पड़ती है। यथार्थ का जो जटिल रूप ठीक-ठीक समझ या पकड़ में नहीं आता, वहाँ 'गहन एक संदेह' पैदा होता है। जहाँ आँख और समझ असमर्थ हों। गहन संदेह हो, वहाँ रहस्य-भावना का पैदा होना स्वाभाविक है। प्रतीकों का बदल जाना भी स्वाभाविक है। जब कथन जटिल होगा तो कविता भी जटिल होगी। ऐसे में कविता ठीक –ठीक पकड़ में आने में वक्त लेती है। अगर ऐसा न होता तो उपेक्षित मुक्तिबोध का उनके जीवन काल में ही महत्व पहचानने वाले और आंकने वाले नामवर सिंह को अपनी प्रिय कविता को समझने में भी तीन दशक का वक्त नहीं लगता। कभी 'अँधेरे में' को 'व्यक्ति अस्मिता की खोज' कहने वाले नामवर जी को वह कविता अब फासिज्म के खतरे के उदय से पैदा हुई लगती है। अभी यह गारंटी नहीं दी जा सकती है कि कोई तीसरी व्याख्या नहीं आ सकती। दी भी नहीं जानी चाहिए। बहरहाल, अगर 'साक्षात् रहस्य' और 'गहन संदेह' के बावजूद मुक्तिबोध प्रगतिशील हैं और यथार्थ वादी हैं तो कबीर भी हैं। जहाँ तक अंतर्विरोधों का सवाल है तो जटिल परिस्थिति के आकलन में इनका होना स्वाभाविक है। मुक्तिबोध के ही समानधर्मा कवि नागार्जुन में अंतर्विरोध तो है, लेकिन गहन-तो-गहन मामूली

किस्म के भी संदेह' का आभाव है. मुक्तिबोध में इसकी उपस्थिति और नागार्जुन में इसका आभाव, रामविलास शर्मा को भले नागार्जुन में प्रगतिशीलता और मुक्तिबोध में अस्तित्व वाद लगता हो, दूसरों के लिए यह उलटबांसी ही है. अंतर्विरोध का होना हमेशा अशुभ ही नहीं होता. वह प्रगति का भी सूचक होता है. जहाँ तक उलटबांसियों की दुरुहता का सवाल है, वह पंडितों और विरोधियों के लिए भले दुरूह हो कबीर प्रेमी जनता के लिए नहीं. इसके प्रमाण हैं प्रेमचन के धीसू- माधव और निराला के चतुरी चमार जैसे करोंड़ों दलित जो कबीर को गाते बजाते हैं और जीवनी शक्ति पाते हैं. इसका प्रमाण है यह लोक प्रचलित उक्ति – 'कबीरदास की उलटी बानी, बरिसे कंबल भीजै पानी.' यह उक्ति वह चाभी है जो कबीर की जनता के पास है और जिससे वह उनकी उलटबांसियों के कठिन कपाट को खोलकर भीतर तक धंसती रही है.

कबीर के यहाँ माया का एक रूप नारी भी है, जिसके बारे में उनके विचार अत्यंत कड़वे हैं. कबीर के रहस्य का एक रूप यह भी है. कबीर साहित्य में कहीं माया और नारी एक हैं. कहीं दोनों ही आग हैं. जिससे मनुष्य जलकर बर्बाद हो जाता है. कहीं नारी विष है, तो कहीं नरक का कुंड. नारी के स्नेह संपर्क से बुद्धि और विवेक नष्ट हो जाते हैं, किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती. नारी आत्मज्ञान और मोक्ष की सबसे बड़ी बाधा है. नारी अपनी हो या पराई, उसके संपर्क से नरक में जाना पड़ता है, आदि-आदि. यहाँ लगता ही नहीं कि ये उसी कबीर के विचार हैं जो सभी स्थापित मान्यताओं की चूलें हिलाकर रख देता है. नारी सम्बन्धी कबीर के ये विचार उसी सोच के तहत आए हैं जिसमें उसके लिए कोई सम्मान जनक स्थान नहीं है. भारतीय धर्म-साधना में पुरुष के लिए स्त्री त्याज्य मानी गई है. ब्रह्मचर्य की महिमा बहुत पहले से गाई जाती रही है. महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य आदि महापुरुषों ने स्त्री का त्याग करके या ब्रह्मचर्य का पालन करके ही ऊँचा पद प्राप्त किया. यह सिलसिला भक्तिकाल में भी जारी रहा. आधुनिक काल में विवेकानंद, महात्मा गाँधी आदि ने भी ब्रह्मचर्य की महिमा का गान किया है. कबीर आदि निर्गुण पंथी संत भी इसी धारणा के शिकार हैं. दलितों के लिए समय-समय पर आवाजें उठती रहीं, भक्तिकाल में जात-पात के बंधन ढीले कर दिए गए, लेकिन स्त्री सम्बन्धी सोच में कोई बदलाव नहीं आया. कबीर जैसा तेजस्वी संत कवि नारी के बारे में ऐसा विचार क्यों रखता है? इसका कोई माकूल उत्तर कबीर के प्रशंसक हजारी प्रसाद द्विवेदी, मुक्तिबोध, इरफ़ान हबीब, नामवर सिंह आदि के लेखन में नहीं है. भक्तिकाल में नारी की सामाजिक स्थिति सोचनीय थी. सभी भक्त कवियों ने स्त्री-विरह के अनूठे प्रसंग रचे हैं. समूचा भक्तिकाव्य अनूठे नारी-विरह से भरा पड़ा है. खुद कबीर के काव्य में नारी-विरह का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है. यह नारी-विरह उनका रहस्य भाव भी है और प्रचंड संवेदना शक्ति भी. यह कार्य संवेदना के स्तर पर हुआ. सोच के स्तर पर स्त्री माया ही है. उस काल में सामन्ती सोच के तहत सामाजिक स्तर पर स्त्री भोग्या और लूट का माल है तो धार्मिक स्तर पर माया. कबीर कभी इस माया से बचने की गुहार लगाते हैं और कभी बताते हैं कि माया उनके हाथ बिक चुकी है. नारी सम्बन्धी कबीर के ये विचार उनकी सीमा तो हैं ही, यह सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन की भी सीमा है. अपनी आधी आबादी के प्रति भक्त कवियों का रवैया भक्ति आन्दोलन के लिए आत्मघाती सिद्ध होता है.

हिंदी आलोचना में यदि कबीर के रहस्यवाद को 'अभारतीय' और लोकधर्म विरोधी कहने वाले हैं तो ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने उनके रहस्यवाद समेत उनकी उलटबांसियों तक का सम्बन्ध-सूत्र उपनिषदों से जोड़ दिया है. पहला प्रयास कबीर के काव्य को लोक चिंता के दायरे से बहार धकेलकर खारिज करने का है तो दूसरा उन्हें शास्त्र सम्मत बनाने का. कबीर के प्रति विरोध और प्रेम का यह ढंग अनोखा है : ये दोनों ही ढंग उनके वास्तविक महत्व पर पर्दा डालते हैं. यह छोटा-सा लेख कबीर के निर्गुण और उनके रहस्यवाद के सामाजिक आधार की प्रस्तावना प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास भर है. रहस्यवाद के शास्त्रीय और अकादमिक विवेचन के रूप में कबीर की संगति बिठाने से ज्यादा जरूरी है, उसके सामाजिक आशय की खोज और उसी खोज की प्रक्रिया को समझना प्रस्तुत लेख का मुख्य अभिप्रेत है.